२२

ब्रह्मचर्य : साधना का सर्वोच्च शिखर

ब्रह्मचर्य का अर्थ है—मन, वचन एवं काय से समस्त इन्द्रियों का संयम करना। जब तक अपने विचारों पर इतना अधिकार न हो जाए कि अपनी धारणा एवं भावना के विरुद्ध एक भी विचार न आए, तब तक वह पूर्ण ब्रह्मचर्य नहीं है। पाइथागोरस कहता है—No man is free, who cannot command himself, जो व्यक्ति अपने आप पर नियन्त्रण नहीं कर सकता है, वह स्वतन्त्र नहीं हो सकता। और, अपने आप पर शासन करने की शक्ति, बिना ब्रह्मचर्य के नहीं आ सकती। भारतीय-संस्कृति में शील को परम भूषण कहा गया है। आत्म-संयम मनुष्य का सर्वोत्कृष्ट सद्गुण है।

ब्रह्मचर्य का अर्थ—स्त्री-पुरुष के संयोग एवं संस्पर्श से बचने तक ही सीमित नहीं है। वस्तुत: आत्मा को अशुद्ध करने वाले विषय-विकारों एवं समस्त वासनाओं से मुक्त होना ही ब्रह्मचर्य का मौलिक अर्थ है। आत्मा की शुद्ध परिणति का नाम ही ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य आत्मा की निर्धूम ज्योति है। अत: मन, वचन एवं कर्म से वासना का उन्मूलन करना ही ब्रह्मचर्य है।[1]

बाह्यरूप में स्त्री-संस्पर्श एवं सहवास का परित्याग ब्रह्मचर्य के अर्थ को पूर्णत:स्पष्ट नहीं करता। एक व्यक्ति स्त्री का स्पर्श नहीं करता और उसके साथ सहवास भी नहीं करता, परन्तु विकारों से ग्रस्त है। रात-दिन मानसिक विषय-वासना के बीहड़ जंगल में मारा-मारा फिरता है, तो उसे हम ब्रह्मचारी नहीं कह सकते। और, किसी विशेष परिस्थिति में निर्विकार-भाव से स्त्री को छू लेने मात्र से ब्रह्म-साधना नष्ट हो जाती है, ऐसा कहना भी भूल होगी। गाँधीजी ने एक जगह लिखा है—"ब्रह्मचारी रहने का यह अर्थ नहीं है कि मैं किसी स्त्री का स्पर्श न करूँ, अपनी बहन का स्पर्श भी न करूँ। ब्रह्मचारी होने का अर्थ है कि स्त्री का स्पर्श करने से मेरे मन में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न न हो, जिस तरह कि कागज को स्पर्श करने से नहीं होता।" अन्तर्मन की निर्विकार दशा को ही वस्तुत: ब्रह्मचर्य कहा गया है।

जैनागमों में भी साधु-साध्वी को आपत्ति के समय आवश्यकता पड़ने पर एक-दूसरे का स्पर्श करने का आदेश दिया गया है। साधु नदी के प्रवाह में प्रवहमान साध्वी को अपनी बाहुओं में उठाकर बाहर ला सकता है। असाध्य बीमारी के समय, यदि अन्य साधु-साध्वी सेवा करने योग्य न हों, तो साधु भ्रातृ-भाव से साध्वी की और साध्वी भगिनी-भाव से साधु की परिचर्या कर सकती है। आवश्यक होने पर एक-दूसरे को उठा-बैठा भी सकते हैं। फिर भी उनका ब्रह्मचर्य-व्रत भंग नहीं होता। परन्तु, यदि परस्पर सेवा करते समय भ्रातृत्व एवं भगिनी-भाव की निर्विकार सीमा का उल्लंघन हो जाता है, मन-मस्तिष्क के किसी भी कोने में वासना का बीज अंकुरित हो उठता है, तो उनकी ब्रह्म-साधना अवश्य दूषित हो जाती है। ऐसी स्थिति में वे प्रायश्चित के अधिकारी बताए गए हैं। विकार की स्थिति में ब्रह्मचर्य की विशुद्ध साधना कथमपि सम्भवित नहीं रहती।

इससे स्पष्ट होता है कि आगम में साधु-साध्वी को उच्छृंखल रूप से परस्पर या अन्य स्त्री-पुरुष का स्पर्श करने का निषेध है। क्योंकि उच्छृंखल भाव से सुषुप्त वासना

---

[1] To attain to perfect purity one has to become absolutely passionfree in thought, speech and action.

—*Gandhi (My Experiment with Truth)*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के जागृत होने की सम्भावना है, और वासना का उदय होना साधना का दोष है। अतः वासना का त्याग एवं वासना को उद्दीप्त करने वाले साधनों का परित्याग ही ब्रह्मचर्य है। वासना, विकार एवं विषयेच्छा आत्मा के शुद्ध भावों की विनाशक है। अतः जिस समय आत्मा के परिणामों में मलिनता आती है, उस समय ब्रह्म-ज्योति स्वतः ही धूमिल पड़ जाती है।

'ब्रह्मचर्य' शब्द भी इसी अर्थ को स्पष्ट करता है। ब्रह्मचर्य शब्द का निर्माण—'ब्रह्म' और 'चर्य' इन दो शब्दों के संयोग से हुआ है। 'ब्रह्मचर्य' अर्थात् ब्रह्म की, पवित्रता की शोध में चर्या अर्थात् प्रवृत्ति, आचरण। ब्रह्म का अर्थ है—आत्मा का शुद्ध-भाव और चर्या का अभिप्राय है—चलना, गति करना या आचरण करना। शुद्ध-भाव कहिए, या परमात्व-भाव कहिए, या सत्य कहिए—बात एक ही है। सब का ध्येय यही है, कि आत्मा को विकारी भावों से हटाकर शुद्ध परिणति में केन्द्रित करना। आत्मा की शुद्ध परिणति ही परमात्म-ज्योति है, परब्रह्म है, अनन्त सत्य की सिद्धि है, और इसे प्राप्त करने की साधना का नाम ही ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य की साधना, सत्य की साधना है, परमात्व-स्वरूप की साधना है। ब्रह्म-व्रत की साधना, वासना के अन्धकार को मूलतः विनुष्ट करने की साधना है।

भारत के प्राचीन योगी, ऋषि एवं मुनियों ने ब्रह्मचर्य शब्द की व्याख्या करते हुए बताया है कि आठ प्रकार के मैथुन से विरत होना ही ब्रह्मचर्य है। वे आठ मैथुन इस प्रकार हैं[1]—स्मरण, कीर्तन, केलि, प्रेक्षण, गुह्य-भाषण, संकल्प, अध्यवसाय और सम्भोग। इन आठ प्रकार के मैथुन-भाव का परित्याग ही वस्तुतः ब्रह्मचर्य शब्द का मौलिक अर्थ है। भारत के विभिन्न धर्मशास्त्रों में ब्रह्मचर्य की साधना करने वाले साधक को चेतावनी देते हुए कहा गया है कि वत्स! इन आठ प्रकार के मैथुन में से किसी एक का भी सेवन करना ब्रह्मचर्य-साधक के लिए वर्जित है। काम का जन्म पहले मन में होता है, फिर वह शरीर में पल्लवित, पुष्पित और फलित होता है। स्मरण से लेकर सम्भोग तक मैथुन के, जो आठ भेद बतलाए हैं, उनमें मानसिक, वाचिक एवं कायिक सभी प्रकार का अब्रह्मचर्य आ जाता है। इस अब्रह्मचर्य से, अपनी वीर्य शक्ति के संरक्षण करने का आदेश और उपदेश समय-समय पर शास्त्रकारों ने दिया है। मनुष्य के मन को विकार और वासना की ओर ले जाने वाले, उसके मनोवेग और इन्द्रियाँ हैं। मनुष्य जैसा विचार करता है, वैसा ही प्रायः वह बोलता है और जैसा बोलता है, वैसा ही वह आचरण भी करता है। अतः विचार, वाणी और आचार पर उसे संयम रखना चाहिए। ब्रह्मचर्य के उपदेश में एक-एक इन्द्रिय को वश में करने पर विशेष बल दिया गया है। इन्द्रियों के निग्रह को ब्रह्मचर्य कहा गया है।

ब्रह्मचर्य के लिए भारतीय साहित्य में इन शब्दों का प्रयोग उपलब्ध होता है—"उपस्थ-संयम, वस्ति-निरोध, मैथुन-विरमण, शील और वासना-जय।" योग-सम्बन्धी ग्रन्थों में ब्रह्मचर्य का अर्थ इन्द्रिय-संयम किया गया है। अथर्व वेद में वेद को भी ब्रह्म कहा गया है। अतः वेद के अध्ययन के लिए आचरणीय कर्म, ब्रह्मचर्य है। ब्रह्म का अर्थ परमात्व-भाव किया जाता है। उस परमात्म भाव के लिए जो अनुष्ठान एवं साधना की जाती है, वह ब्रह्मचर्य है। बौद्ध पिटको में ब्रह्मचर्य शब्द तीन अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। दीघनिकाय के 'महापरिनिब्बाण सुत्त' में ब्रह्मचर्य शब्द का प्रयोग—बुद्ध प्रतिपादित धर्म-मार्ग के अर्थ में हुआ है। दीघनिकाय के पोट्ठपाद में ब्रह्मचर्य का अर्थ है—बौद्ध धर्म में निवास। विसुद्धिमग्गो के प्रथम भाग में ब्रह्मचर्य का अर्थ वह धर्म है, जिससे निर्वाण की प्राप्ति हो।

---

१. स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्य-भाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रिया-निर्वृत्तिरेव च॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन-दृष्टि में ब्रह्मचर्य :

जैन-दर्शन में ब्रह्मचर्य शब्द के लिए मैथुन-विरमण और शील शब्द का प्रयोग विशेष रूप से उपलब्ध होता है। 'सूत्रकृतांग सूत्र' की आचार्य शीलांक कृत संस्कृत टीका में, ब्रह्मचर्य की व्याख्या इस प्रकार की गई है—"जिसमें सत्य, तप, भूत-दया और इन्द्रिय निरोध रूप ब्रह्म की चर्या—अनुष्ठान हो, वह ब्रह्मचर्य है।" वाचक उमास्वाति के 'तत्त्वार्थ सूत्र' ९-६ भाष्य में गुरुकुल-वास को ब्रह्मचर्य कहा गया है। ब्रह्मचर्य का उद्देश्य बताया है, व्रत-परिपालन, ज्ञानवृद्धि और कषाय-जय। भाष्य में मैथुन शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है—स्त्री और पुरुष का युगल मिथुन कहलाता है। मिथुन का कर्म मैथुन है।

गीता में कहा गया है कि जो साधक परमात्व-भाव को अधिगत करना चाहता है, उसे ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना चाहिए। बिना इसके परमात्व-भाव की साधना नहीं की जा सकती। क्योंकि विषयासक्त मनुष्य का मन बाहर में इन्द्रियजन्य भोगों के जंगल में ही भटकता रहता है, वह अन्दर की ओर नहीं जाता। अन्तर्मुख मन ही ब्रह्मचर्य का साधक हो सकता है। विषयोन्मुख मन सदा चञ्चल बना रहता है।

ब्रह्मचर्य की परिधि :

भारतीय धर्म और संस्कृति में, साधना के अनेक मार्ग विहित किए गए हैं, किन्तु सर्वाधिक श्रेष्ठ और सबसे अधिक प्रखर साधना का मार्ग, ब्रह्मचर्य की साधना है। 'ब्रह्मचर्य' शब्द में जो शक्ति, जो बल, और जो पराक्रम निहित है, वह भाषाशास्त्र के किसी अन्य शब्द में नहीं है। वीर्य-रक्षा ब्रह्मचर्य का एक स्थूल रूप है। ब्रह्मचर्य, वीर्य-रक्षा से भी अधिक कहीं गम्भीर एवं व्यापक है। भारतीय धर्मशास्त्रों में ब्रह्मचर्य के तीन भेद किए गए हैं—कायिक, वाचिक और मानसिक। इन तीनों प्रकारों में मुख्यता मानसिक ब्रह्मचर्य की है। यदि मन में ब्रह्मचर्य नहीं है, तो वह वचन में एवं शरीर में कहाँ से आएगा। जो व्यक्ति अपने मन को संयमित नहीं रख सकता, वह कभी भी ब्रह्मचर्य की साधना में सफल नहीं हो सकता। ब्रह्मचर्य की साधना एक वह साधना है, जो अन्तर्मन में अल्प विकार के आने पर भी खण्डित हो जाती है। महर्षि पतञ्जलि ने अपने 'योग-शास्त्र' में ब्रह्मचर्य की परिभाषा करते हुए बताया है कि, **"ब्रह्मचर्य-प्रतिष्ठायां वीर्य-लाभः"**। इसका अर्थ है कि जब साधक के मन में, वचन नें और तन में, ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठित हो जाता है, स्थिर हो जाता है, तब उसे वीर्य का लाभ मिलता है, शक्ति की प्राप्ति होती है। ब्रह्मचर्य की महिमा प्रदर्शित करने वाले उपर्युक्त योग-सूत्र में प्रयुक्त वीर्य शब्द की व्याख्या करते हुए, टीकाकारों एवं भाष्यकारों ने वीर्य का अर्थ शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक सभी तरह की शक्ति एवं बल किया है। यह ब्रह्मचर्य का तेजस्वी तत्त्व है।

भोजन और ब्रह्मचर्य :

ब्रह्मचर्य की साधना के लिए साधक को अपने भोजन पर विचार करना चाहिए। भोजन का और ब्रह्मचर्य का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। आयुर्वेद-शास्त्र के अनुसार यह कहा गया है कि मनुष्य के विचारों पर उसके भोजन का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। मनुष्य जैसा भोजन करता है, उसी के अनुसार विचार बनते हैं और जैसे उसके विचार होते हैं, उसी के अनुसार उसका आचरण होता है। लोक में भी कहावत है कि—'जैसा आहार, वैसा विचार और जैसा अन्न वैसा मन।' इन कहावतों में जीवन का गहरा तथ्य छुपा हुआ है। मनुष्य जो कुछ और जैसा भोजन करता है, उसका मन वैसा ही अच्छा या बुरा बनता है। क्योंकि भुक्त-भोजन से जीवन के मूलतत्त्व रुधिर की उत्पत्ति होती है और इसमें वे ही गुण आते हैं, जो गुण भोजन में होते हैं। भोजन हमारे मन और बुद्धि के अच्छे और बुरे होने में निमित्त बनता है। इसी आधार पर भारतीय-संस्कृति में यह कहा गया है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि सात्विक गुणों की साधना करने वाले के लिए सात्विक भोजन की नितान्त आवश्यकता है। सात्त्विक भोजन हमारी साधना का मूल आधार है।

मनुष्य के जीवन की उन्नति तब होती है, जब वह प्राकृतिक रूप से मिलने वाले भोजन से अपने आपको पुष्ट करता रहे। मृदुता, सरलता, सहानुभूति, शान्ति और इनके विपरीत उग्रता, क्रोध, कपट एवं घृणा आदि सब मानव-प्रकृति के गुण-दोष प्रायः भोजन पर ही निर्भर करते हैं। जो व्यक्ति उत्तेजक भोजन करते हैं, वे संयम से किस तरह रह सकते हैं? राजसी और तामसी आहार करने वाला व्यक्ति यह भूल जाता है कि राजस और तामस उसकी साधना में प्रतिकूलता ही उत्पन्न करते हैं, क्योंकि भोजन का तथा हमारे विचारों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। भोजन हमारे संस्कार बनाता है, जिनके द्वारा हमारे विचार बनते हैं। यदि भोजन सात्विक है, तो मन में उत्पन्न होने वाले विचार सात्विक एवं पवित्र होंगे। इनके विपरीत, राजस और तामस भोजन करने वालों के विचार अशुद्ध और विलासमय होंगे।

सात्विक भोजन :

जो ताजा, रसयुक्त, हलका, सुपाच्य, पौष्टिक और मधुर हो, जिससे जीवन-शक्ति, सत्य, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति बढ़ती हो, उसे सात्विक भोजन कहा जाता है। सात्विक भोजन से चित्त की और मन की निर्मलता एवं एकाग्रता की प्राप्ति होती है।

राजसिक भोजन :

कड़वा, खट्टा, अधिक नमकीन, बहुत गरम, तीखा, रूखा, एवं जलन पैदा करने वाला, साथ ही दुःख, शोक और रोग उत्पन्न करने वाला भोजन राजसिक होता है। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव मन तथा इन्द्रियों पर पड़ता है।

तामसिक भोजन :

मांस, मछली, अण्डे और मदिरा तथा अन्य नशीले पदार्थ तामसिक भोजन में परिगणित किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त अधपका, दुष्पक्व, दुर्गन्धयुक्त और बासी भोजन भी तामसिक में है। तामसिक भोजन से मनुष्य की विचार-शक्ति मन्द हो जाती है। तामसिक भोजन करने वाला व्यक्ति दिन-रात आलस्य में पड़ा रहता है। इन तीन प्रकार के भोजनों का वर्णन 'गीता' के सतरहवें अध्याय में विस्तार से किया गया है।

इन तीनों प्रकार के भोजनों में ब्रह्मचर्य की साधना करने वाले के लिए सात्विक भोजन ही सर्वश्रेष्ठ बतलाया गया है।

'छान्दोग्य उपनिषद्' में कहा गया है कि आहार की शुद्धि से सत्व की शुद्धि होती है। सत्व की शुद्धि से बुद्धि निर्मल बनती है। स्मृति ताजा बनी रहती है। सात्विक भोजन से चित्त निर्मल हो जाता है, बुद्धि में स्फूर्ति रहती है।

ब्रह्मचर्य के भेद :

मानव मन की वासना, इच्छा या कामना आध्यात्मिक नहीं, भौतिक शक्ति है। वह स्वतंत्र नहीं है, उसका नियंत्रण मनुष्य के हाथ में है। यदि मनुष्य उसे अपने नियंत्रण से बाहर नहीं जाने देता है, तो वह इन्सान का कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकती। आँखों का काम देखना है और अन्य इन्द्रियों के भी अपने-अपने काम हैं। ब्रह्मचारी की इन्द्रियाँ भी देखने, सुनने, सूंघने, चखने आदि के काम तो करती ही हैं, परन्तु वे उसके नियंत्रण से बाहर नहीं हैं, इसलिए वासना की आग उसका जरा भी बाल बाँका नहीं कर सकती। परन्तु जब मनुष्य का वासना पर से नियंत्रण हट जाता है, वह बिना किसी रोक-टोक के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन और इन्द्रियों को खुला छोड़ देता है, तो वे अनियंत्रित एवं उच्छृङ्खल वासनाएँ उस को तबाह कर देती हैं, पतन के अन्ध गर्त में गिरा देती हैं।

वस्तुत: शक्ति, शक्ति ही है। निर्माण या ध्वंस की ओर मुड़ते उसे देर नहीं लगती। इसलिए यह अनुशासक (Controller) के हाथ में है कि वह उसका विवेक के साथ उपयोग करे। वह अपनी शक्ति को नियंत्रण से बाहर न होने दे। आवश्यकता पड़ने पर शक्ति का उपयोग हो सकता है, परन्तु विवेक के साथ। विवेकशील का काम एक कुशल इंजीनियर (expert engineer) की भाँति है। उसे अपने काम में सदा सावधान रहना पड़ता है और समय एवं परिस्थितियों का भी ध्यान रखना पड़ता है।

मान लो, एक इंजीनियर पानी के प्रवाह को रोककर उसकी ताकत का मानव-जाति के हित में उपयोग करना चाहता है। इसके लिए वह तीनों ओर से मजबूत पहाड़ियों से आवृत्त स्थल की ओर एक दीवार बनाकर बाँध (dam) का रूप देता है। साथ ही वह उसमें कई द्वार भी बनाता है, ताकि उनके द्वारा अनावश्यक पानी को निकालकर बाँध की सुरक्षा की जा सके। बाँध में जितने पानी को रखने की क्षमता है, उतने पानी के भरने तक तो बाँध को कोई खतरा नहीं होता। परन्तु, जब उसमें उसकी क्षमता से अधिक पानी भर जाता है, उस समय भी यदि इंजीनियर उसके द्वार को खोलकर फालतू पानी को बाहर नहीं निकालता है, तो वह पानी का प्रबल स्रोत इधर-उधर कहीं भी बाँध की दीवार को तोड़ देता है और लक्ष्यहीन बहने वाला उद्दाम जल-प्रवाह मानव-जाति के लिए विनाश-कारी प्रलय का दृश्य उपस्थित कर देता है। अत: कोई भी कुशल इंजीनियर इतनी बड़ी भूल नहीं करता कि जो देश के लिए खतरा पैदा कर दे।

यही स्थिति हमारे मन के बाँध की है, वासनाओं के प्रवाह को पूर्णत: नियंत्रण में रखना, यह साधक का परम कर्त्तव्य है। परन्तु उसे यह अवश्य देखना चाहिए कि उसकी क्षमता कितनी है। यदि वह उन पर पूर्णत: नियंत्रण कर सकता है और समुद्र-पायी पौराणिक अगस्त्य ऋषि की भाँति, वासना के समुद्र को पीकर पचा सके, तो यह आत्म-विकास के लिए स्वर्ण अवसर है। परन्तु यदि वह वासनाओं पर पूरा नियंत्रण करने की क्षमता नहीं रखता है, फिर भी वह उस प्रचण्ड प्रवाह को बाँधे रखने का असफल प्रयत्न करता है, तो यह उसके जीवन के लिए खतरनाक भी बन सकता है।

भगवान् महावीर ने साधना के दो रूप बताए हैं—१. वासनाओं पर पूर्ण नियंत्रण और २. वासनाओं का केन्द्रीकरण। या यों कहिए—पूर्ण ब्रह्मचर्य और आंशिक ब्रह्मचर्य। जो साधक पूर्ण रूप से वासनाओं पर नियंत्रण करने की क्षमता नहीं रखता है, वह यदि यथावसर वासना के स्रोत को निर्धारित दिशा में बहने के लिए उसका द्वार खोल देता है, तो कोई भयंकर पाप नहीं करता है। वह उच्छृङ्खल रूप से प्रवहमान वासना के प्रवाह को केन्द्रित करके अपने को भयंकर अध:पतन से बचा लेता है।

जैन-धर्म की दृष्टि से विवाह वासनाओं का केन्द्रीकरण है। असीम वासनाओं को सीमित करने का मार्ग है। नीतिहीन पाशविक जीवन से मुक्त होकर, नीतियुक्त मानवीय जीवन को स्वीकार करने का साधन है। पूर्ण ब्रह्मचर्य की ओर बढ़ने का कदम है, अत: जैन-धर्म में विवाह के लिए स्थान है, परन्तु पशु-पक्षियों की तरह अनियंत्रित रूप से भटकने के लिए कोई स्थान नहीं है। वेश्यागमन और परदार सेवन के लिए कोई छूट नहीं है। जैन-धर्म वासना को केन्द्रित एवं मर्यादित करने की बात को स्वीकार करता है और साधक की शक्ति एवं अशक्ति को देखते हुए विवाह को अमुक अंशों में उपयुक्त भी मानता है। परन्तु वह वासनाओं को उच्छृङ्खल रूप देने की बात को बिल्कुल उपयुक्त नहीं मानता। वासना का अनियंत्रित रूप, जीवन की बर्बादी है, आत्मा का पतन है।

वासना को केन्द्रित करने के लिए प्रत्येक स्त्री-पुरुष (गृहस्थ) के लिए यह आव-श्यक है कि वह जिसके साथ विवाह बन्धन में बँध चुका है या बँध रहा है, उसके अतिरिक्त प्रत्येक स्त्री-पुरुष को वासना की दृष्टि से नहीं, भ्रातृत्व एवं भगिनीत्व की दृष्टि से देखे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भले ही वह स्त्री या पुरुष किसी के द्वारा गृहीत हो या अगृहीत हो, अर्थात् वह विवाहित हो या अविवाहित, विवाहानन्तर परित्यक्त हो या परित्यक्ता, श्रावक एवं श्राविका का उसके साथ पवित्र सम्बन्ध रहता है। वह कभी भी उसे अपवित्र दृष्टि से नहीं देखता।

श्रावक-श्राविका के लिए यह भी आवश्यक है कि वह स्पर्शन इन्द्रियजन्य वासना पर ही नहीं, प्रत्युत अन्य इन्द्रियों पर भी नियंत्रण रखे। उन्हें ऐसे पदार्थों को नहीं खाना चाहिए, जो वासना की आग को प्रज्वलित करने वाले हैं। उनका खाना स्वाद के लिए नहीं, बल्कि साधना के लिए शरीर को स्वस्थ रखने के हेतु है। इसलिए उन्हें खाना खाते समय सदा मादक वस्तुओं से, अधिक मिर्च मसालेदार पदार्थों से, तामस पदार्थों से एवं प्रकाम भोजन से बचना चाहिए। उनकी खुराक नियमित होनी चाहिए और उन्हें पशु-पक्षी की तरह जब चाहा तब नहीं, प्रत्युत नियत समय का ध्यान रखना चाहिए। इससे स्वास्थ्य भी नहीं बिगड़ता और विकार भी कम जागृत होते हैं।

खाने की तरह सुनने, देखने एवं बोलने पर भी संयम रखना आवश्यक है। उन्हें एसे शृङ्गारिक एवं अश्लील गीत न गाना चाहिए और न सुनना चाहिए, जिससे सुषुप्त वासना जागृत होती हो। उन्हें अश्लील एवं असभ्य हंसी-मजाक से भी बचना चाहिए। उन्हें न तो अश्लील सिनेमा एवं नाटक देखना चाहिए और न ऐसे भद्दे एवं गन्दे उपन्यासों एवं कहानियों को पढ़ने में समय बर्बाद करना चाहिए।

अश्लील गीत, असभ्य हंसी-मजाक, शृङ्गारिक सिने-चित्र और गन्दे उपन्यास देश, समाज एवं धर्म के भावी कर्णधार बनने वाले युवक-युवतियों के हृदय में वासना की आग भड़काने वाले हैं, कुलीनता और शिष्टता के लिए खुली चुनौती हैं और समग्र सामाजिक वायुमण्डल को विषाक्त बनाने वाले हैं। अतः प्रत्येक सद्गृहस्थ का यह परम कर्तव्य है कि वह इस संक्रामक रोग से अवश्य ही बच कर रहे।

विवाह और ब्रह्मचर्य :

विवाह वासना को नियंत्रित करने का एक साधन है। यह एक मलहम (Ointment) है। और मलहम का उपयोग उसी समय किया जाता है, जब शरीर के किसी अंग-प्रत्यंग पर जख्म हो गया हो। परन्तु घाव के भरने के बाद कोई भी समझदार व्यक्ति शरीर पर मलहम लगाकर पट्टी नहीं बाँधता, क्योंकि मलहम सुख का साधन नहीं, बल्कि रोग को शान्त करने का उपाय है। इसी तरह विवाह वासना के उद्दाम वेग को रोकने के लिए है, विकारों के रोग को क्षणिक-उपशान्त करने को है, न कि उसे बढ़ाने के लिए। अतः दाम्पत्य जीवन भी अमर्यादित नहीं, मर्यादित होना चाहिए। उन्हें सदा भोगों में आसक्त नहीं रहना चाहिए। अस्तु दाम्पत्य जीवन में भी परस्पर ऐसी मर्यादाहीन क्रीड़ा नहीं करनी चाहिए, जिससे वासना को भड़कने का प्रोत्साहन मिलता हो। अतः श्रावक को भगवत् स्मरण करते हुए नियत समय पर सोना चाहिए, नियत समय पर ही उठना चाहिए और विवेक को नहीं भूलना चाहिए।

विवाह शब्द का क्या अर्थ है? यह संस्कृत भाषा का शब्द है। 'वि' का अर्थ है—विशेष रूप से और 'वाह' का अर्थ है—वहन करना या ढोना। अतः विशेष रूप से एक-दूसरे के उत्तरदायित्व को वहन करना, उसकी रक्षा करना, विवाह कहलाता है। स्त्री, पुरुष के जीवन के सुख-दुःख एवं दायित्व को वहन करे और पुरुष, स्त्री के सुख-दुःख को एवं जवाब-देही को वहन करने का यथोचित ध्यान रखे।

केवल वहन करना ही नहीं है, किन्तु विशेष रूप से वहन करना है, उठाना है, निभाना है और अपने उत्तरदायित्व को पूरा करना है। इतना ही नहीं, अपने जीवन की आहुति देकर भी उसे वहन करना है।

जैन-धर्म की दृष्टि में विवाह जीवन का केन्द्रीकरण है, असीम वासनाओं को सीमित करने का मार्ग है, पूर्ण संयम की ओर अग्रसर होने का कदम है और पाशविक जीवन से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निकल कर नीतिपूर्ण मर्यादित मानव-जीवन को अंगीकार करने का साधन है। जैन-धर्म में विवाह के लिए जगह है, परन्तु पशु-पक्षियों की तरह भटकने के लिए जगह नहीं है। वेश्यागमन और पर-दार-सेवन के लिए कोई जगह नहीं है और इस रूप में जैन-धर्म जन-चेतना के समक्ष एक महान् आदर्श उपस्थित करता है।

ब्रह्मचर्य की साधना :

ब्रह्मचर्य जीवन की साधना है, अमरत्व की साधना है। महापुरुषों ने कहा है— ब्रह्मचर्य जीवन है, वासना मृत्यु है। ब्रह्मचर्य अमृत है, वासना विष है। ब्रह्मचर्य अनन्त शान्ति है, अनुपम सुख है। वासना अशांति एवं दुःख का अथाह सागर है। ब्रह्मचर्य शुद्ध ज्योति है, वासना कालिमा। ब्रह्मचर्य ज्ञान-विज्ञान है, वासना भ्रान्ति एवं अज्ञान। ब्रह्मचर्य अजेय शक्ति है, अनन्त बल है, वासना जीवन की दुर्बलता, कायरता एवं नपुंसकता।

ब्रह्मचर्य, जीवन की मूल शक्ति है। जीवन का ओज है। जीवन का तेज है। ब्रह्मचर्य सर्वप्रथम शरीर को सशक्त बनाता है। वह हमारे मन को मजबूत एवं स्थिर बनाता है। हमारे जीवन को सहिष्णु एवं सक्षम बनाता है। क्योंकि आध्यात्मिक साधना के लिए शरीर का सक्षम एवं स्वस्थ होना आवश्यक है। वस्तुतः मानसिक एवं शारीरिक क्षमता आध्यात्मिक साधना की पूर्व भूमिका है। जिस व्यक्ति के मन में अपने आपको एकाग्र करने की, विचारों को स्थिर करने की तथा शरीर में कष्टों एवं परीषहों को सहने की क्षमता नहीं है, आपत्तियों की संतप्त दुपहरी में हँसते हुए आगे बढ़ने का साहस नहीं है, वह आत्मा की शुद्ध ज्योति का साक्षात्कार नहीं कर सकता। भारतीय संस्कृति का यह वज्र आघोष रहा है कि—"जिस शरीर में बल नहीं है, शक्ति नहीं है, क्षमता नहीं है, उसे आत्मा का दर्शन नहीं होता।"[1] सबल शरीर में ही सबल आत्मा का निवास होता है। इसका तात्पर्य इतना ही है कि परीषहों की आँधी में भी मेरु के समान स्थिर रहने वाला सहिष्णु व्यक्ति ही आत्मा के यथार्थ स्वरूप को पहचान सकता है। परन्तु कष्टों से डर कर पथ-भ्रष्ट होने वाला कायर व्यक्ति आत्म-दर्शन नहीं कर सकता।

ब्रह्मचर्य के आधार-बिन्दु :

ब्रह्मचर्य की साधना के लिए और उसकी परिपूर्णता के लिए शास्त्रकारों ने कुछ साधन एवं उपायों का वर्णन किया है, जिनके अभ्यास से साधारण-से-साधारण साधक भी ब्रह्मचर्य का पालन आसानी से कर सकता है। उचित अभ्यास एवं सावधानी के अभाव में कभी-कभी ब्रह्मचर्य की साधना में बड़े-बड़े योगी, ध्यानी और तपस्वी भी विचलित हो जाते हैं। इस प्रकार के एक नहीं, अनेक उदाहरण शास्त्रों में आज भी उपलब्ध होते हैं। फिर भी साधक को हताश और निराश होने की आवश्यकता नहीं है। जो मनुष्य भूल कर सकता है, वह अपना सुधार भी कर सकता है। जो मनुष्य पतन के मार्ग पर चला है, वह उत्थान के मार्ग की ओर भी चल सकता है। जो मनुष्य आज दुर्बल है, कल वह सबल भी हो सकता है। मनुष्य के जीवन का पतन तभी होता है, जब वह अपने अन्दर के आध्यात्म भाव को भूलकर, बाहर के लुभावने एवं क्षणिक भोग-विलास में फँस जाता है। विषयासक्त मनुष्य किसी भी प्रकार की अध्यात्म-साधना करने में सफल नहीं होता, क्योंकि उसके मानस में वासनाओं, कामनाओं और विभिन्न विकल्पनाओं का ताण्डव नृत्य होता रहता है। जो व्यक्ति नाना प्रकार के विकल्प और विकारों में फँसा रहता है, वह ब्रह्मचर्य तो क्या, किसी भी साधना में सफल नहीं हो सकता।

---

१. नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः—मुण्डकोपनिषद्, ३।२।४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाधि : नव बाड़ :

ब्रह्मचर्य की साधना की सफलता के लिए भगवान् महावीर ने ब्रह्मचर्य के रक्षात्मक नव साधनों का, गुप्तियों का उपदेश दिया है, जिनका आचरण करके ब्रह्मचर्य-व्रत की साधना करने वाला साधक अपने उद्देश्य में सफल हो सकता है। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए जिन उपायों एवं साधनों को परम प्रभु भगवान् महावीर ने समाधि और गुप्ति कहा है, लोक-भाषा में उन्हीं को बाड़ कहा जाता है। जिस प्रकार किसान अपने खेत की रक्षा के लिए अथवा बागवान अपने बाग के नन्हे-नन्हे पौधों की रक्षा के लिए उनके चारों ओर काँटों की बाड़ लगा देता है, जिससे कि कोई पशु खेत और पौधों को किसी प्रकार की हानि न पहुँचा सके। साधना के क्षेत्र में भी प्रारम्भिक ब्रह्मचर्य रूप बाल-पौधे की रक्षा के लिए, बाड़ की नितान्त आवश्यकता है। भगवान् महावीर ने 'स्थानांग सूत्र' में समाधि, गुप्ति और बाड़ों का कथन किया है। उत्तरकालीन आचार्यों ने भी अपने-अपने ग्रन्थों में ब्रह्मचर्य की रक्षा के इन उपायों का विविध प्रकार से उल्लेख किया है, जिसे पालन कर साधक ब्रह्मचर्य की साधना में सफल हो सकता है, और अपने मन के विकारों पर विजय प्राप्त कर सकता है।

स्थानांग सूत्र :

१. ब्रह्मचारी स्त्री[1] से विविक्त शयन एवं आसन का सेवन करने वाला हो। स्त्री, पशु एवं नपुंसक से संसक्त स्थान में न रहे।

२. स्त्री-कथा न करे।
३. किसी भी स्त्री के साथ एक आसन पर न बैठे।
४. स्त्रियों की मनोहर इन्द्रियों का अवलोकन न करे।
५. नित्यप्रति सरस भोजन न करे।
६. अति मात्रा में भोजन न करे।
७. पूर्व-सेवित काम-क्रीड़ा का स्मरण न करे।
८. शब्दानुपाती और रूपानुपाती न बने।
९. साता और सुख में प्रतिबद्ध न हो।

उत्तराध्ययन सूत्र :

१. ब्रह्मचारी स्त्री, पशु एवं नपुंसक-सहित मकान का सेवन न करे।
२. स्त्री-कथा न करे।
३. स्त्री के आसन एवं शय्या पर न बैठे।
४. स्त्री के अंग एवं उपांगों का अवलोकन न करे।
५. स्त्री के हास्य एवं विलास के शब्दों को न सुने।
६. पूर्व-सेवित काम-क्रीड़ा का स्मरण न करे।
७. नित्य प्रति सरस भोजन न करे।
८. अति मात्रा में भोजन न करे।
९. विभूषा एवं श्रृंगार न करे।
१०. शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श का अनुपाती न हो।

---

१. ब्रह्मचर्य के प्रसंग में यहाँ एवं अन्यत्र जहाँ कहीं पुरुष ब्रह्मचारी के लिए स्त्री-संसर्ग का निषेध किया है, वहाँ स्त्री ब्रह्मचारियों के लिए पुरुष-संसर्ग का भी निषेध है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनगार धर्मामृत :

१. ब्रह्मचारी रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तथा शब्द के वैषयिक रसों का पान करने की इच्छा न करे।

२. ब्रह्मचारी वह कार्य न करे, जिससे किसी भी प्रकार के लैंगिक विकार होने की सम्भावना हो।

३. कामोद्दीपक आहार का सेवन न करे।

४. स्त्री से सेवित शयन एवं आसन का उपयोग न करे।

५. स्त्रियों के अंगों को न देखे।

६. स्त्री का सत्कार न करे।

७. शरीर का संस्कार (शृंगार) न करे।

८. पूर्वसेवित काम का स्मरण न करे।

९. भविष्य में काम-क्रीड़ा करने की बात न सोचे।

१०. इष्ट रूप आदि विषयों में मन को संसक्त न करे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मूल आगम और आगमकाल के बाद होने वाले श्वेताम्बर एवं दिगम्बर आचार्यों ने अपने-अपने समय में, गुप्ति और बाड़ों का विविध प्रकार से संक्षेप एवं विस्तार में, मूल आगमों का आधार लेकर वर्णन किया है। समाधि का अर्थ है--मन की शान्ति। गुप्ति का अर्थ है—विषयों की ओर जाते हुए मन का गोपन करना, मन का निरोध करना। समाधि और गुप्ति के अर्थ में ही मध्यकाल के अपभ्रंश साहित्यकारों ने बाड़ शब्द का प्रयोग किया है। अतः तीनों शब्दों का एक ही अर्थ है कि वह उपाय एवं साधन, जिससे ब्रह्मचर्य की रक्षा भलीभाँति हो सके।

इसके अतिरिक्त ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए शास्त्रकारों ने कुछ अन्य उपाय भी बतलाए हैं, जिनका सम्यक् परिपालन करने से ब्रह्मचर्य की साधना दुष्कर नहीं रहती। इन साधनों का अवलम्बन एवं सहारा लेकर साधक सरलता के साथ ब्रह्मचर्य की साधना कर सकता है। यद्यपि समाधि, गुप्ति एवं बाड़ों के नियमों में सभी प्रकार के उपायों का समावेश हो जाता है, तथापि एक अन्य प्रकार से भी ब्रह्मचर्य को स्थिर बनाने के लिए उपदेश दिया गया है, जिसे भावना कहा जाता है। यह भावनायोग द्वादश प्रकार का है। उस द्वादश प्रकार के भावना-योग में ब्रह्मचर्य से सविशेष रूप से सम्बन्धित अशुचि भावना का वर्णन मूल आगम में, उसके बाद आचार्य हेमचन्द्र के 'योगशास्त्र' में, आचार्य शुभचन्द्र के 'ज्ञानार्णव' में और स्वामी कार्तिकेय विरचित 'द्वादशानुप्रेक्षा' में विस्तार के साथ किया गया है। मनुष्य के मन में जो विचार उठता है, उसी को भावना एवं अनुप्रेक्षा कहा जाता है। परन्तु प्रस्तुत में पारिभाषिक भावना एवं अनुप्रेक्षा का अर्थ है--किसी विषय पर पुनः पुनः चिन्तन करना, मनन करना, विचार करना। 'पुनः पुनश्चेतसि निवेशनं भावना'। आगम में शरीर की अशुचि का विचार इसलिए किया गया है, कि मनुष्य के मन में अपने या अन्य के सुन्दर रूप और सौन्दर्य पर आसक्ति-भाव न हो। क्योंकि शरीर ही ममता एवं आसक्ति का सबसे बड़ा केन्द्र है। मनुष्य जब किसी सुन्दर नारी के मोहक रूप एवं सौन्दर्य को देखता है, तब वह मुग्ध होकर अपने अध्यात्म-भाव को भूल जाता है। इसी प्रकार नारी भी किसी पुरुष के सौन्दर्य को देखकर मुग्ध बन जाती है। फलतः दोनों के मन में काम-राग की उत्पत्ति हो जाती है। इस स्थिति में ब्रह्मचर्य का परिपालन कैसे किया जा सकता है? अस्तु, अपने एवं दूसरों के शरीर की आसक्ति एवं व्यामोह को दूर करने के लिए ही शास्त्रकारों ने अशुचि भावना का उपदेश दिया है।

द्वादशानुप्रेक्षा :

स्वामी कार्तिकेय ने अशुचि-भावना का वर्णन करते हुए लिखा है कि--हे साधक!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तू देह पर आसक्ति क्यों करता है? जरा इस शरीर के अन्दर के रूप को तो देख, इसमें क्या कुछ भरा हुआ है। इसमें मल-मूत्र, हाड़-माँस और दुर्गन्ध के अतिरिक्त रखा भी क्या है? चर्म का पर्दा हटते ही इसकी वास्तविकता तेरे सामने आ जाएगी। इस शरीर पर चन्दन एवं कपूर आदि सुगन्धित द्रव्य लगाने से वे स्वयं भी दुर्गन्धित हो जाते हैं। जो कुछ सरस एवं मधुर पदार्थ मनुष्य खाता है, वह सब कुछ शरीर के अन्दर पहुँचकर मलरूप में परिणत हो जाता है। और तो क्या, इस शरीर पर पहना जाने वाला वस्त्र भी इसके संयोग से मलिन हो जाता है। हे भव्य! जो शरीर इस प्रकार अपवित्र एवं अशुचिपूर्ण है, उस पर तू मोह क्यों करता है, आसक्ति क्यों करता है? तू अपने अज्ञान के कारण ही इस शरीर से स्नेह और प्रेम करता है। यदि इसके अन्दर का सच्चा रूप तेरे सामने आ जाए, तो एक क्षण भी तू इसके पास बैठ नहीं सकेगा। खेद की बात है कि मनुष्य अपने पवित्र आत्म-भाव को भूलकर, इस अशुचिपूर्ण शरीर पर मोह करता है। यह शरीर तो अशुचि, अपवित्र और दुर्गन्धयुक्त है। इस प्रकार अशुचि भावना के चिन्तन से साधक के मानस में त्याग और वैराग्य की भावना प्रबल होती है। इससे रूप की आसक्ति मन्द होती है। जिससे ब्रह्मचर्य के पालन में सहयोग मिलता है।

योग-शास्त्र :

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने 'योगशास्त्र' के चतुर्थ प्रकाश में द्वादश भावनाओं का बड़ा सुन्दर एवं मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है। उसमें छठी अशुचि-भावना का वर्णन करते हुए कहा गया है कि—यह शरीर, जिसके रूप और सौन्दर्य पर मनुष्य अहंकार एवं आसक्ति करते हैं, वह वास्तव में क्या है? यह शरीर रस, रक्त, माँस, मेद (चर्बी), अस्थि (हाड़), मज्जा, वीर्य, आँत एवं मल-मूत्र आदि अशुचि पदार्थों से परिपूर्ण है। चर्म के पर्दे को हटाकर देखा जाए, तो यही सब कुछ उसमें देखने को मिलेगा। अतः यह शरीर किस प्रकार पवित्र हो सकता है? यह तो अशुचि एवं मलिन है। इस देह के नव द्वारों से सदा दुर्गन्धित रस झरता रहता है और इस रस से यह शरीर सदा लिप्त रहता है। इस अशुचि शरीर में और अपवित्र देह में सुन्दरता और पवित्रता की कल्पना करना, ममता और मोह की विडम्बना मात्र है। इस प्रकार निरन्तर शरीर की अशुचि का चिन्तन करते रहने से मनुष्य के मन में वैराग्य-भावना तीव्र होती है और काम-ज्वर उपशान्त हो जाता है।

ज्ञानार्णव :

आचार्य शुभचन्द्र ने अपने 'ज्ञानार्णव' में, जिसका दूसरा नाम 'योग-प्रदीप' है, कहा है कि—इस संसार में विविध प्रकार के जीवों को जो शरीर मिला है, वह स्वभाव से ही गलन और सड़न-धर्मी है। अनेक धातु और उपधातुओं से निर्मित है। शुक्र और शोणित से इसकी उत्पत्ति होती है। यह शरीर अस्थि-पंजर है। हाड़, माँस और चर्बी की दुर्गन्ध इसमें से सदा आती रहती है। भला जिस शरीर में मल-मूत्र भरा हो, कौन बुद्धिमान उस पर अनुराग करेगा? इस भौतिक शरीर में एक भी तो पदार्थ पवित्र और सुन्दर नहीं, जिस पर अनुराग किया जा सके। यह शरीर इतना अपवित्र और अशुचि है कि क्षीर-सागर के पवित्र जल से भी यदि इसे धोया जाए तो उसे भी यह अपवित्र बना देता है। इस भौतिक तन की वास्तविक स्थिति पर जरा विचार तो कीजिए, यदि इस शरीर के बाहरी चर्म को हटा दिया जाए, तो मक्खी, कृमि, काग और गिद्धों से इसकी रक्षा करने में कोई समर्थ नहीं हो सकता। यह शरीर अपवित्र ही नहीं है, बल्कि हजारों-हजार प्रकार के भयंकर रोगों का घर भी है। इस शरीर में भयंकर रोग भरे पड़े हैं, इसीलिए तो शरीर को व्याधि का मन्दिर कहा जाता है। बुद्धिमान मनुष्य वह है, जो अशुचि भावना के चिन्तन और मनन से शरीर की गर्हित एवं निन्दनीय स्थिति को देखकर एवं जानकर, इसे भोग-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वासना में न लगाकर, परमार्थ-भाव की साधना में लगाता है। विवेकशील मनुष्य विचार करता है कि इस अपवित्र शरीर की उपलब्धि के प्रारम्भ में भी दुःख था, अन्त में भी दुःख होगा और मध्य में भी यह दुःख रूप ही है। भला जो स्वयं दुःख रूप है, वह सुख रूप कैसे हो सकता है ? इस अपवित्र तन से सुख की आशा रखना मृग-मरीचिका के तुल्य है। इस अशुचि भावना के चिन्तन का फल यह है कि मनुष्य के मानस में त्याग और वैराग्य के विचार तरंगित होने लगते हैं और वह अपनी वासना पर विजय प्राप्त कर लेता है।

तत्त्वार्थ-भाष्य :

आचार्य उमास्वाति ने स्वप्रणीत तत्त्वार्थ सूत्र के 'स्वोपज्ञ-भाष्य' में ब्रह्मचर्य-व्रत की पाँच भावनाओं का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। उसमें कहा गया है कि ब्रह्मचर्य-व्रत की साधना करने वाले साधक के लिए आवश्यक है कि वह अनुदिन ब्रह्मचर्य-व्रत की पाँच भावनाओं का चिन्तन और मनन करे। जो साधक प्रतिदिन इन पाँच भावनाओं का चिन्तन और मनन करता है, उसकी वासना धीरे-धीरे क्षीण होने लगती है। ब्रह्मचर्य-व्रत की पाँच भावनाएँ इस प्रकार हैं—

१. जिस स्थान में स्त्री, पशु और नपुंसक रहते हों, ऐसे स्थान पर ब्रह्मचारी को नहीं रहना चाहिए। जिस आसन एवं शय्या पर स्त्री बैठी हो अथवा पुरुष बैठा हो, तो दोनों को एक-दूसरे के शय्या एवं आसन पर नहीं बैठना चाहिए।

२. राग-भाव से पुरुष को स्त्री-कथा और स्त्री को पुरुष की कथा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि इससे राग-भाव बढ़ता है।

३. स्त्रियों के मनोहर अंग एवं उपांगों का तथा कटाक्ष और विलासों का अवलोकन नहीं करना चाहिए। राग-भाव के वशीभूत होकर बार-बार पुरुषों को स्त्रियों की ओर तथा स्त्रियों को पुरुषों की ओर नहीं देखना चाहिए।

४. पूर्व-सेवित रति-सम्भोग आदि का स्मरण नहीं करना चाहिए और भविष्य के लिए भी इनकी अभिलाषा नहीं करनी चाहिए।

५. ब्रह्मचर्य-व्रत की साधना करने वाले को, भले ही वह स्त्री हो या पुरुष, प्रणीत (गरिष्ठ), कामोत्तेजक सरस एवं मधुर भोजन प्रतिदिन नहीं करना चाहिए। यह पाँच ब्रह्मचर्य-व्रत की भावनाएँ हैं। इनका निरंतर चिन्तन करते रहने से ब्रह्मचर्य स्थिर होता है।

आचार्य उमास्वाति ने स्वप्रणीत 'तत्त्वार्थ-भाष्य' के नवम अध्याय में द्वादश भावनाओं का भी अति सुन्दर वर्णन किया है। अशुचि भावना का वर्णन करते हुए कहा है कि—यह शरीर अशुचि एवं अपवित्र है। क्योंकि यह शुक्र और शोणित से बना है, जो अपने आप में स्वयं ही अपवित्र है। इस शरीर का दूसरा आधार आहार है। आहार भी शरीर के अन्दर पहुँच कर रस एवं खल आदि भागों में परिणत होता है। खल भाग से मल एवं मूत्र बनते हैं और रस भाग से रक्त, माँस, मज्जा एवं वीर्य आदि बनते हैं। इस अशुचिता के कारण शरीर पवित्र कैसे हो सकता है ? शरीर में जितने भी अशुचि पदार्थ हैं, यह शरीर उन सबका आधार है। कान का मल, आँख का मल, दांत का मल और पसीना ये सब शरीर के अन्दर से पैदा होते हैं और बाहर निकलकर भी शरीर को अपवित्र ही करते हैं। जो शरीर अन्दर और बाहर दोनों ओर से अशुचि एवं अपवित्र है, उसके क्षणिक रूप और सौन्दर्य पर मुग्ध होना एक प्रकार की विचार-मूढ़ता ही है। इस शरीर का सब-कुछ क्षणभंगुर है। क्षण-क्षण में परिवर्तित होने वाला है। कम-से-कम इस शरीर की चार अवस्थाएँ शास्त्रकारों ने मानी हैं—शैशव, यौवन, प्रौढ़ और वृद्धत्वभाव। इन चार अवस्थाओं में कोई-सी भी अवस्था स्थायी नहीं है। ऋतुकाल में पिता के वीर्य-बिन्दुओं के और माता के रजकणों के आधान से लेकर, यह शरीर क्रम से अनेक अवस्थाओं में अनुबद्ध हुआ करता है, जिसका वर्णन शरीर-शास्त्र में विस्तार के साथ किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीर की इन विभिन्न अवस्थाओं के देखने और जानने से विचार आता है कि मनुष्य इतने अपवित्र शरीर पर भी आसक्ति और ममता क्यों करता है? अशुचि भावना का चिन्तन मनुष्य को राग से विराग की ओर ले जाता है।

संवेग और वैराग्य :

ब्रह्मचर्य की साधना करने वाले साधक के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने मन को सदा संवेग और वैराग्य में संलग्न रखे। किन्तु, प्रश्न होता है कि मनुष्य के मानस में संवेग और वैराग्य की भावना को स्थिर कैसे किया जाए? इसके समाधान में आचार्य उमास्वाति ने स्वप्रणीत 'तत्त्वार्थ-भाष्य' के सातवें अध्याय में वर्णन किया है कि—संवेग और वैराग्य को स्थिर करने के लिए ब्रह्मचर्य के साधक को अपने मानस में शरीर और जगत् के स्वभाव का चिन्तन करते रहना चाहिए। जगत् अर्थात् संसार का चिन्तन इस प्रकार करना चाहिए कि यह संसार षड्द्रव्यों का समूह रूप है। द्रव्यों का प्रादुर्भाव और तिरोभाव—उत्पाद और विनाश निरन्तर होता रहता है। संसार का स्वभाव है—बनना और बिगड़ना। संसार के नाना रूप दृष्टिगोचर होते हैं। उनमें से किसको सत्य मानें! संसार का जो रूप कल था, वह आज नहीं है और जो आज है, वह कल नहीं रहेगा। यह विश्व द्रव्य रूप में स्थिर होते हुए भी पूर्व पर्याय के विनाश और उत्तर पर्याय के उत्पाद से नित्य निरन्तर परिवर्तनशील है। इस संसार में एक भी पदार्थ ऐसा नहीं है, जो क्षण-भंगुर और परिवर्तनशील न हो। जब संसार का एक भी पदार्थ स्थिर और शाश्वत नहीं है, तब भौतिक तत्त्वों से निर्मित यह देह और उसका रूप स्थिर और शाश्वत कैसे हो सकता है? बाल अवस्था में जो शरीर सुन्दर लगता है, यौवनकाल में जो कमनीय लगता है, वही तन वृद्धावस्था में पहुँचकर अरुचिकर, असुन्दर और घृणित बन जाता है। फिर इस तन पर ममता करने से लाभ भी क्या है? तन की इस ममता से ही वासना का जन्म होता है, जो ब्रह्मचर्य को स्थिर नहीं रहने देती। अतः तन की ममता को दूर करने के लिए साधक को शरीर और संसार के स्वभाव का चिन्तन करते रहना चाहिए।

दुःख-भावना :

आचार्य उमास्वाति ने अपने 'तत्त्वार्थ-भाष्य' में ब्रह्मचर्य की स्थिरता के लिए दुःख-भावना का वर्णन भी किया है। कहा गया है—"मैथुन-सेवन से कभी सुख प्राप्त नहीं होता। जैसे खुजली होने पर मनुष्य उसे खुजलाता है, खुजलाते समय कुछ काल के लिए उसे सुखानुभूति अवश्य होती है, किन्तु फिर चिरकाल के लिए उसे दुःख उठाना पड़ता है। खुजलाने से खाज में रक्त बहने लगता है और फिर पीड़ा भी भयंकर होने लगती है। इसी प्रकार विषय-सुख के सेवन से क्षण भर के लिए स्पर्शजन्य सुख भले ही प्राप्त हो जाए, किन्तु उस सुख की अपेक्षा व्यभिचार करने से मनुष्य को दुःख ही अधिक उठाना पड़ता है। यदि परस्त्री गमन रूप अपराध करता हुआ पकड़ा जाता है, तो समाज और राज्य उसे कठोर से कठोर दण्ड देने का विधान करता है। लोक में उसका अपवाद और अपयश फैल जाता है। कभी-कभी तो इस प्रकार के अपराधी के हाथ, पैर, कान और प्रजनन इन्द्रिय आदि अवयव का छेदन भी करा दिया जाता है। अब्रह्मचर्य के सेवन से प्राप्त होने वाले ये दुःख तो इसी लोक के हैं, किन्तु परलोक में तो इनसे भी कहीं अधिक भयंकर दुःख-पीड़ा और संत्रास प्राप्त होते हैं। मैथुन व्यभिचार और अब्रह्मचर्य के सेवन से प्राप्त होने वाले इन दुःखों का चिन्तन करने से मनुष्य मैथुन से विरत हो जाता है, व्यभिचार का परित्याग कर देता है।" आचार्य उमास्वाति ने इसीलिए कहा है कि निरन्तर दोषों का चिन्तन करो। उससे प्राप्त होने वाले दुःख और क्लेशों का विचार करो। इस प्रकार के विचार से और मैथुन के रोग-दर्शन से वासना शान्त हो जाती है और ब्रह्मचर्य का पालन सुगम हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मशास्त्र और ब्रह्मचर्य :

भारतीय संस्कृति में धर्म को परम मंगल कहा गया है—'**धम्मो मंगलमुक्किट्ठं**'। धर्म को परम मंगल कहने का अभिप्राय यही है कि धर्म, मानव जीवन को पतन से उत्थान की ओर ले जाता है। ह्रास से विकास की ओर ले जाता है। भारतीय संस्कृति के मूल में धर्म इतना रूढ़ हो चुका है कि भारत का एक साधारण से साधारण नागरिक भी धर्म-हीन समाज और धर्महीन संस्कृति की कल्पना नहीं कर सकता। भारतीय धर्मों की किसी भी परम्परा को लें, उनके समस्त सम्प्रदाय और उप-सम्प्रदाय के भवनों की आधार-शिला धर्म ही है। भारतीय ही नहीं, ग्रीक का महान् दार्शनिक तथा सुकरात का योग्यतम शिष्य प्लेटो भी, धर्म को Highest Virtue परम मंगल एवं परम सद्गुण मानता है। इसका अर्थ यही है कि धर्म से बढ़कर आत्म-विकास एवं आत्म-कल्याण के लिए अन्य कोई साधन मानव-संस्कृति में स्वीकृत नहीं किया गया है। श्रमण-संस्कृति के शान्तिदूत, करुणावतार जन-जन की चेतना के अधिनायक, अहिंसा और अनेकान्त का दिव्य प्रकाश प्रदान करने वाले भगवान् महावीर ने धर्म के सम्बन्ध में कहा है कि जिस मनुष्य के हृदय में धर्म का आवास है, उस मनुष्य के चरणों में स्वर्ग के देवता भी नमस्कार करते हैं। '**देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो**'[1]—धर्मशील आत्मा के दिव्य अनुभाव की सत्ता को मानने से इन्कार करने की शक्ति, जगतीतल के किसी भी चेतनाशील प्राणी में नहीं है। विश्व के विचारकों ने आज तक जो चिन्तन एवं अनुभव किया है, उसका निष्कर्ष उन्होंने यही पाया कि जगत् के इस अभेद में भेद की, और भेद में अभेद की स्थापना करने वाला तत्व धर्म से बढ़कर अन्य कुछ नहीं हो सकता। परन्तु प्रश्न होता है कि वह धर्म क्या है? एक जिज्ञासु सहज भाव से यह प्रश्न कर सकता है कि "**कोऽयं धर्मः कुतो धर्मः**" अर्थात् वह धर्म क्या है, जिसकी सत्ता और शक्ति से कभी इन्कार नहीं किया जा सकता? मानव-जीवन के इस दिव्य प्रयोजन से इन्कार करने का अर्थ आत्मघात ही होता है। तथाभूत-धर्म के स्वरूप को समझने के लिए प्रत्येक चेतनाशील व्यक्ति के हृदय में जिज्ञासा उत्पन्न होती है। मानव-मन की उक्त जिज्ञासा के समाधान में परम प्रभु भगवान् महावीर ने धर्म का स्वरूप बतलाते हुए कहा कि जन-जन में प्रेम-बुद्धि रखना, जीवन की प्रतिकूल परिस्थिति में भी अपनी सहिष्णुता का परित्याग न करना तथा अपने मन की उद्दाम वृत्तियों पर अंकुश रखना, यही सबसे बड़ा धर्म है। इस परम पावन धर्म की अभिव्यक्ति उन्होंने तीन शब्दों में की—अहिंसा, संयम और तप। "**अहिंसा संजमो तवो।**" जहाँ जीवन में स्वार्थ का ताण्डव नृत्य हो रहा है, वहाँ अहिंसा के दिव्यदीप को स्थिर रखने के लिए, संयम आवश्यक है और संयम को विशुद्ध रखने के लिए तप की आवश्यकता है। जीवन में जब अहिंसा, संयम और तपरूप ब्रह्मचर्य का संयोग मिल जाता है, तब जीवन पावन और पवित्र बन जाता है। अतः ब्रह्मचर्य धर्म मानव-जीवन का एक दिव्य प्रयोजन है।

दर्शन-शास्त्र और ब्रह्मचर्य :

भारतीय संस्कृति का मूल आधार है—तप, त्याग और संयम। संयम में जो सौन्दर्य है, वह भौतिक भोग-विलास में कहाँ है। भारतीय-धर्म और दर्शन के अनुसार सच्चा सौन्दर्य तप और त्याग में ही है। संयम ही यहाँ का जीवन है। '**संयमः खलु जीवनम्।**' संयम में से आध्यात्मिक संगीत प्रकट होता है। संयम का अर्थ है—अध्यात्म-शक्ति। संयम एक सार्वभौम भाव है। पूर्व और पश्चिम उभय संस्कृतियों में इसका आदर एवं सत्कार है। संयम, शील और सदाचार ये जीवन के पवित्र प्रतीक हैं। संयम एवं शील क्या है? जीवन को सुन्दर बनाने वाला प्रत्येक विचार ही तो संयम एवं शील है। असंयम की दवा संयम ही हो सकती है। विष की चिकित्सा अमृत ही हो सकती है। भारतीय

---

१. दशवैकालिक सूत्र। १-१,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्कृति में कहा गया है कि—"**सागरे सर्वतीर्थानि**" संसार के समस्त तीर्थ जिस प्रकार समुद्र में समाहित हो जाते हैं, उसी प्रकार दुनिया भर के संयम, सदाचार एवं शील ब्रह्मचर्य में अन्तर्निहित हो जाते हैं। एक गुरु अपने शिष्य से कहता है—"**यथेच्छसि तथा कुरु**" यदि तेरे जीवन में त्याग, संयम और वैराग्य है, तो फिर तू भले ही कुछ भी कर, कहीं भी जा, कहीं पर भी रह, तुझे किसी प्रकार का भय नहीं है। आचार्य मनु कहते हैं कि—"**मनःपूतं समाचरेत्**" यदि मन पवित्र है, तो फिर जीवन का पतन हो नहीं सकता। इसलिए जो कुछ भी साधना करनी हो, वह पवित्र मन से करो। यही ब्रह्मचर्य की साधना है।

सुकरात, प्लेटो और अरस्तू, जो अपने युग के महान् दार्शनिक, विचारक और समाज के समालोचक एवं संशोधक थे, अपनी ग्रीक-संस्कृति का सारतत्त्व बतलाते हुए उन्होंने भी यही कहा है कि संयम और शील के बिना मानव-जीवन निस्तेज एवं निष्प्रभ है। मनुष्य यदि अपने जीवन में सदाचारी नहीं हो सकता, तो वह कुछ भी नहीं हो सकता। संयम और सदाचार ही मानव-जीवन के विकास के आधारभूत तत्त्व हैं। प्लेटो ने लिखा है कि मनुष्य-जीवन के तीन विभाग हैं—Thought (विचार), Desires (इच्छाएँ) और Feelings (भावनाएँ)। मनुष्य अपने मस्तिष्क में जो कुछ सोचता है, अपने मन में वह वैसी ही इच्छा करता है और उसकी इच्छाओं के अनुसार ही उसकी भावना बनती है। मनुष्य व्यवहार में वही करता है, जो कुछ उसके हृदय के अन्दर भावनाएँ उठती हैं। विचार से आचार प्रभावित होता है और आचार से मनुष्य का विचार भी प्रभावित होता है।

अध्यात्म दृष्टि :

भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति भौतिक नहीं, आध्यात्मिक है। यहाँ प्रत्येक व्रत, तप, जप और संयम को भौतिक दृष्टि से नहीं, आध्यात्मिक दृष्टि से आँका जाता है। साधक जब भोग-वाद के दल-दल में फँस जाता है, तो अपनी आत्मा के शुद्ध स्वरूप को वह भूल जाता है। इसलिए भारतीय विचारक, तत्त्व-चिन्तक और सुधारक साधक को बार-बार चेतावनी देते हैं कि आसक्ति, मोह, तृष्णा और वासना के कुचक्रों से बचो। जो व्यक्ति वासना के झंझावात से अपने शील की रक्षा नहीं कर पाता, वह कथमपि अपनी साधना में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। न जाने कब वासना की तरंग मन में उठ खड़ी हो। वासना की इस दूषित तरंग के प्रभाव से बचने के लिए सतत् जागरुक और सावधान रहने की आवश्यकता है।

अध्यात्म और ब्रह्मचर्य :

कवि कालिदास ने अपने महाकाव्य 'कुमार संभव' में परमयोगी शंकर के जिस तप का उग्र वर्णन किया है, वह पाठक और श्रोता को निश्चय ही चकित कर देने वाला है। परन्तु अन्त में महाकवि कालिदास ने यह दिखलाया कि उस योगी का वह योग, और उस तपस्वी का वह तप, गौरी को वरण करके इति को प्राप्त हुआ। इस जीवन-गाथा से यह आभास मिलता है और पाठक यह निर्णय निकाल लेता है कि ब्रह्मचर्य की साधना असम्भव है। मनुष्य इसकी साधना में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता।

परन्तु महाकवि भारवी ने अपने 'किरातार्जुनीय' महाकाव्य में अर्जुन के तप और योग का जो विशद् वर्णन किया है, वह पाठक को चकित और स्तब्ध कर देने वाला है। महाभारत के युद्ध से पूर्व, शिव का वरदान पाने के लिए अर्जुन जब योग-साधना में लीन हो जाता है, तब उसकी योग-साधना की परीक्षा के लिए अथवा उसे साधना से भ्रष्ट करने के लिए, इन्द्र अनेक सुन्दर अप्सराओं को भेजता है और वे मिलकर, अपने मधुर-संगीत, सुन्दर नृत्य और मादक हाव-भाव से अर्जुन के साधना-लीन चित्त को विचलित करने का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूरा प्रयत्न करती हैं, किन्तु उन्हें अपने उस कार्य में तनिक भी सफलता प्राप्त नहीं होती। वीर अर्जुन के जीवन की यह घटना ब्रह्मचर्य के साधकों के लिए एक दिव्य आलोक बन गई है। इसका निष्कर्ष यह निकलता है कि ब्रह्मचर्य की साधना करने वालों ने उसे जो असम्भव समझ लिया है, वह असम्भव तो नहीं, पर कठिनतर एवं दुष्कर अवश्य है। ब्रह्मचर्य की साधना को हमारे प्राचीन शास्त्रों में जो कठिनतर कहा गया है, उसका अर्थ केवल इतना ही है कि ब्रह्मचर्य की साधना प्रारम्भ करते समय, चित्त को विशुद्ध रखने का सतर्कता के साथ पूरा प्रयत्न किया जाना चाहिए। यदि कभी चित्त में जरा भी मलिनता का प्रवेश हो जाता है, असावधानता की कुज्झटिका से ज्ञानदीप का प्रकाश धुंधला हो जाता है, तब यह साधना कठिनतम ही नहीं, अपितु असम्भव भी हो जाती है। अतः ब्रह्मचर्य की साधना के मार्ग पर चलने वाले साधक के लिए यह संकेत दिया गया कि वह अपने मन और मस्तिष्क को सदा पवित्र रखे।

बौद्ध-शास्त्रों में भी ब्रह्मचर्य की साधना के सम्बन्ध में, अनेक प्रकार के रूपक एवं आख्यान उपलब्ध होते हैं, जिनके अध्ययन एवं परिशीलन से यह ज्ञात होता है कि बौद्ध साधक ब्रह्मचर्य की साधना को कितना महत्त्व देते थे और अपनी साधना की सफलता के लिए कितना सत्यप्रयत्न करते थे। स्वयं भगवान् बुद्ध के जीवन की वह घटना हमें कितनी पवित्र प्रेरणा देती है, जिसमें यह बतलाया गया है कि जब बुद्ध साधना कर रहे थे, बोधि प्राप्त करने के लिए तप कर रहे थे, उस समय मार (काम) उन्हें साधना से विचलित करने के लिए मादक तथा रंगीन वातावरण उनके सामने प्रस्तुत करता है। इस सन्दर्भ में महाकवि अश्वघोष ने अपने 'बुद्ध-चरित' में वर्णन किया है कि मार ने सुन्दर से सुन्दर अप्सराएँ भेजकर, उनके संगीत-नृत्य और विविध प्रकार के हाव-भावों से बुद्ध के साधना-लीन चित्त को विचलित करने का पूर्ण प्रयत्न किया, किन्तु बुद्ध अपनी साधना में एक स्थिर योद्धा की भाँति अजेय रहे, अकम्प और अडोल रहे। महाकवि अश्वघोष ने अन्त में यह भी लिखा कि वासना के इस भयंकर युद्ध में, मार पराजित हुआ और बुद्ध विजेता बने। बौद्ध संस्कृति में यह बतलाया गया है कि जब तक साधक अपने मन के मार पर विजय प्राप्त नहीं कर लेता है, तब तक वह बुद्ध बनने के योग्य नहीं है, बुद्ध बनने के लिए मार अर्थात् काम पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है।

श्रमण-संस्कृति के ज्योतिर्धर इतिहास में तो एक नहीं, अनेक हृदयस्पर्शी जीवन-गाथाओं का अंकन किया गया है, जिनमें ब्रह्मचर्य की साधना के सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। मनुष्य जीवन के लिए प्रेरणाप्रद एवं दिशा-दर्शक रूपक आख्यानों से ब्रह्मचर्य की साधना करने वाले साधकों के लिए पवित्र प्रेरणा और बल प्राप्त होता है। मूल आगमों में 'राजीमती' और 'रथनेमि' का वर्णन आज भी उपलब्ध है। रथनेमि, जो अपने युग का कठोर साधक था, रैवताचल की गुफा के एकान्त स्थान में राजीमती के अद्भुत सौंदर्य को देख कर मुग्ध हो जाता है, वह अपनी साधना को भूल जाता है और वासना का दास बनकर राजीमती से प्रणय की याचना करने लगता है। परन्तु उस ज्योतिर्मयी नारी ने उसकी इस संयम-भ्रष्टता की भर्त्सना की और कहा कि कोई भी साधक अपनी साधना में तब तक सफल नहीं हो सकता, जब तक कि वह अपने मन के विकल्पों को न जीत ले। रूप को देख कर भी जिसके मन में रूप के प्रति आसक्ति उत्पन्न न हो, वह वस्तुतः सच्चा साधक है। काम और वासना पर बिना विजय प्राप्त किए, कोई भी अपनी साधना के अभीष्ट फल को अधिगत नहीं कर सकता। और तो क्या, भ्रष्ट जीवन की अपेक्षा तो मरण ही श्रेयस्कर है। राजीमती के दिव्य उपदेश को सुनकर रथनेमि पुनः संयम में स्थिर हो जाता है।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने 'त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित' में एक महान् साधक के जीवन का बड़ा ही सुन्दर एवं भव्य चित्र अंकित किया है। वे महान् साधक थे 'स्थूल भद्र' जिन्होंने अपने जीवन की ज्योति से ब्रह्मचर्य की साधना को सदा के लिए ज्योतिर्मय बना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिया। दो हजार वर्ष जितना लम्बा एवं दीर्घ समय व्यतीत हो जाने पर भी आज तक के साधक, ब्रह्मचर्य व्रत के अमर साधक स्थूलभद्र को भूल नहीं सके हैं। स्थूलभद्र के जीवन के सम्बन्ध में आचार्य हेमचन्द्र ने लिखा है कि वे योगियों में श्रेष्ठ योगी, ध्यानियों में श्रेष्ठ ध्यानी और तपस्वियों में श्रेष्ठ तपस्वी थे। पूर्व स्नेहानुरक्त अप्रतिम सुन्दरी कोशा वेश्या के यहाँ चार महीने रह कर भी, वे वैसे ही निर्विकार सर्वथा शुद्ध बाहर आए, जैसे सघन बादलों में से चन्द्रमा। स्थूलभद्र की इस यशो-गाथा को सुनने के बाद सुनने वाले के दिमाग में यह प्रश्न उठ सकता है कि आखिर वह क्या साधना थी? कैसे की गई थी? उन्होंने इस बात के लिए दृढ़ शब्दों में कहा था कि—"मेरी साधना में जो एक विघ्न था, वह भी स्वतः ही दूर हो गया। जब मैं एक बार बन्धन-मुक्त हो गया हूँ, तब फिर दुबारा बन्धन में क्यों फँसूं?" निश्चय ही उनका जीवन सरस, शान्त, शीतल एवं प्रकाशमय था। उनके जीवन के इस संयम के कारण ही, उनकी धारणा-शक्ति अपूर्व बन सकी थी। किसी भी शास्त्र में उनकी बुद्धि रुकती नहीं थी। यह बौद्धिक बल उन्हें ब्रह्म-चर्य से प्राप्त हुआ था।

स्वामी विवेकानन्द का नाम कौन नहीं जानता? विवेकानन्द के जीवन में जो एकाग्रता, एकनिष्ठता और तन्मयता थी, वह किसी दूसरे पुरुष में देखने को नहीं मिलती। उनकी प्रतिभा एवं मेधा-शक्ति के चमत्कार के विषय में कहा जाता है कि वे जब किसी ग्रन्थ का अध्ययन करने बैठते थे, तब एक आसन पर एक साथ ही अध्याय के अध्याय पढ़ लेते थे और किसी के पूछने पर वे उन्हें ज्यों का त्यों सुना भी देते थे। उनकी स्मरण-शक्ति अद्भुत थी। कोई भी विषय ऐसा नहीं था, जिसे वे आसानी से न समझ सकते हों। स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे कि ब्रह्मचर्य के बल से सारी बातें साधी जा सकती हैं।

आधुनिक युग के अध्यात्म योगी साधक श्रीमद् राजचन्द्र से सभी परिचित हैं। उनमें शताधिक अवधान करने की क्षमता एवं योग्यता थी। जिस भाषा का उन्होंने अध्ययन नहीं किया था, उस भाषा के कठिन से कठिन शब्दों को भी वे आसानी से हृदयंगम कर लेते थे। यह उनके ब्रह्मचर्य योग की साधना का ही शुभ परिणाम है। उन्होंने ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में अपने एक ग्रन्थ में कहा है—

"निरखी ने नव यौवना, लेश न विषय निदान।
गणे काष्ठ नी पूतली, ते भगवंत समान।।

ब्रह्मचर्य की इससे अधिक परिभाषा एवं व्याख्या नहीं की जा सकती, जो ब्रह्म-चर्य-योगी श्रीमद् राजचन्द्र ने अपने इस एक दोहे में कर दी है।

ब्रह्मचर्य का प्रभाव :

ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में जैन-धर्म ने और दूसरे धर्मों ने भी एक बहुत महत्त्वपूर्ण बात कही है। वह यह कि ब्रह्मचर्य आत्मा की आन्तरिक शक्ति होते हुए भी बाह्य पदार्थों में परिवर्तन कर देने की अद्भुत क्षमता रखता है। वह प्रकृति के भयंकर से भयंकर पदार्थों की भयंकरता को नष्ट कर उनको आनन्दमय एवं मंगलमय बना देता है।

ब्रह्मचर्य की साधना, जीवन की एक कला है। अपने आचार-विचार और व्यवहार को बदलने की साधना है। कला वस्तु को सुन्दर बनाती है, उसके सौन्दर्य में अभिवृद्धि करती है। और आचार भी यही काम करता है। वह जीवन को सुन्दर, सुन्दरतर और सुन्दरतम बनाता है। जीवन में शारीरिक सौन्दर्य से, आचरण का सौन्दर्य हजारों-हजार गुणा अच्छा है। श्रेष्ठ आचरण मूर्ति, चित्र एवं अन्य कलाओं की अपेक्षा अधिक आनन्द प्रदाता है।[1] वह केवल अपने जीवन के लिए ही नहीं, बल्कि अन्य व्यक्तियों के लिए भी

1. A beautiful behaviorus is better than a beautiful form it gives a higher pleasure than statues and Pictures.—*Emerson*.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आनन्दप्रद होता है। आचरणहीन व्यक्ति सबके मन में काँटे की तरह खटकता है और आचार-संपन्न पुरुष सर्वत्र सम्मान पाता है। प्रत्येक व्यक्ति उसके श्रेष्ठ आचरण का अनुकरण करता है। वह अन्य व्यक्तियों के लिए एक आदर्श स्थापित करता है।[1] अतः आचार की जीवन कला समस्त कलाओं में सुन्दरतम कला है।[2]

आचरण जीवन का एक दर्पण है। इसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को देखा-परखा जा सकता है।[3] आचरण, व्यक्ति की श्रेष्ठता और निकृष्टता का मापक यन्त्र (Thermometre) है। आचरण की श्रेष्ठता उसके जीवन की उच्चता एवं उसके उच्चतम रहन-सहन तथा व्यवहार को प्रकट करती है। इसके अन्दर कार्य करने वाली मानवता और दानवता का, मनुष्यता और पाशविकता का स्पष्ट परिचय मिलता है। मनुष्य के पास आचार, विचार एवं व्यवहार से बढ़कर कोई प्रमाण-पत्र नहीं है, जो उसके जीवन की सच्चाई एवं यथार्थ स्थिति को खोलकर रख सके। यह एक जीवित प्रमाण-पत्र है, जिसे दुनिया की कोई भी शक्ति झुठला नहीं सकती।

आचरण की गिरावट, जीवन की गिरावट है, जीवन का पतन है। रूढ़िवाद के द्वारा माने जाने वाले किसी नीच कुल में जन्म लेने मात्र से कोई व्यक्ति पतित एवं अपवित्र नहीं हो जाता है। वस्तुतः पतित वह है, जिसका आचार-विचार निकृष्ट है। उसके भाव, भाषा और कर्म निम्न कोटि के हैं, जो रात-दिन भोगवासना में डूबा रहता है, वह उच्च कुल में पैदा होने पर भी नीच है, पामर है। यथार्थ में चाण्डाल वह है, जो सज्जनों को उत्पीड़ित करता है, व्यभिचार में डूबा रहता है और अनैतिक व्यवसाय करता है या उसे चलाने में सहयोग देता है।[4]

देश के प्रत्येक युवक और युवती का कर्तव्य है कि वह अपने आचार की श्रेष्ठता के लिए "Simple living and high thinking."—सादा जीवन और उच्च विचार का आदर्श अपनाएँ। वस्तुतः सादगी ही जीवन का सर्वश्रेष्ठ अलंकार है। क्योंकि स्वाभाविक सुन्दरता (Natural beauty) ही महत्त्वपूर्ण है और उसे प्रकट करने के लिए किसी तरह की बाह्य सजावट (Make-up) की आवश्यकता नहीं है। इसका यह अर्थ नहीं है कि शरीर की सफाई एवं स्वस्थता के लिए योग्य साधनों का प्रयोग ही न किया जाए। यहाँ शरीर की शुद्धि के लिए इन्कार नहीं है, परन्तु इसका तात्पर्य इतना ही है कि वास्तविक सौन्दर्य को दबाकर कृत्रिमता को उभारने के लिए विलासी प्रसाधनों का उपयोग करना निषिद्ध है। इससे जीवन में विलासिता बढ़ती है और काम-वासना को उद्दीप्त होने का अवसर मिलता है। अतः सामाजिक व्यक्ति को अपने यथाप्राप्त रूप को कुरूप करके वास्तविक सौन्दर्य को छिपाने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु उसे कृत्रिम बनाने का प्रयत्न न करे। उसे कृत्रिम साधनों से चमकाने के लिए समय एवं शक्ति की बर्बादी करना मूर्खता है। हमारा बाहरी जीवन सादा और आन्तरिक जीवन सद्गुणों एवं सद्विचारों से सम्पन्न होना चाहिए।[5]

सौन्दर्य आत्मा का गुण है। उसे चमकाने के लिए आत्म-शक्ति को बढ़ाने का प्रयत्न करें। अपने आप पर नियन्त्रण रखना सीखें। वासनाओं के प्रवाह में न बह कर, उन्हें नियन्त्रित करने की कला सीखें। यही कला जीवन को बनाने की कला है। और

---

१. यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।—गीता।

2. Behavious is the finest of five art.—*Emerson.*

3. Behavious is Mirror in which everyone display his image.—*Goethe*

४. जे अहिभवन्ति साहूँ, ते पावा ते अ चण्डाला।—मृच्छकटिक, १०, २२।

5. Let our life be Simple in its outer aspect and rich in its inner gain.—*Rabindra Nath Tagore*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी का नाम आचार है, चरित्र (Character) है और नैतिक शक्ति (Moral Power) है। इसका विकास आत्मा का विकास है, जीवन का विकास है।

ब्रह्मचर्य की महिमा का गान, देखिए, किस उदात्त एवं गंभीर स्वर से किया है।

"देव-दाणव-गंधव्वा, जक्ख-रक्खस-किन्नरा।
बंभयारिं नमंसंति, दुक्करं जे करेन्ति तं॥"

—उत्तराध्ययन सूत्र, १६, १६.

—जो महान् आत्मा दुष्कर ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, समस्त दैवी शक्तियाँ उनके चरणों में सिर झुका देती हैं। देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर ब्रह्मचारी के चरणों में सभक्तिभाव नमस्कार करते हैं।

ब्रह्मचर्य संयम का मूल है। परब्रह्म—मोक्ष का एकमात्र कारण है। ब्रह्मचर्य पालन करने वाला, पूज्यों का भी पूज्य है। सुर, असुर एवं नर—सभी का वह पूज्य होता है, जो विशुद्ध मन से ब्रह्मचर्य की साधना करता है। ब्रह्मचर्य के प्रभाव से मनुष्य स्वस्थ, प्रसन्न और सम्पन्न रहता है। ब्रह्मचर्य की साधना से मनुष्य का जीवन तेजस्वी और ओजस्वी बन जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org